गंगा मैया
भाग 2

भैरव प्रसाद गुप्त

हिन्दी ADDA

गंगा मैया
भाग 2

चार

बाप अब सचमुच बूढ़े हो गये। दोनों बेटे क्या उनसे बिछड़ गये, उनके दोनों हाथ ही टूट गये! दिल के सारे रस को दर्द की आग ने ज़ला दिया। कोई उत्साह, आशा न रह गयी उनके जीवन में। बहुओं का दर्द देखकर वह आठों पहर कुढ़ते रहते। खाना-पीना, काम-धाम कुछ अच्छा न लगता। बहुओं का बड़ा भाई आकर खेती-गिरस्ती का इन्तजाम कर जाता।

माँ का हाल भी बेहाल था। बैठी-बैठी वह आँसू बहाती रहती या अपने लालों को याद कर-करके बिसूरती रहती। छोटी बहू के दिल में जो एक बार शूल चुभा, तो उसका चैन हमेशा के लिए ख़त्म हो गया। वह बड़ी ही कोमल और भावुक स्वभाव की थी। दुनिया के दुख और चिन्ता का उसे कोई अनुभव न था। सहसा जो आफत का पहाड़ उसके सिर पर आ गिरा, तो वह उससे दब-दबाकर चूर-चूर होकर रह गयी। उसने चारपाई पकड़ ली। खाना-पीना छोड़ दिया, दिन-दिन सूखने लगी। सास-ससुर अपने दुख का आवेग रोककर उसे समझाते, भाई और दूसरी औरतें उसे अपने को सँभालने को कहते, लेकिन जैसे उनके कानों में किसी की बात ही न पड़ती।

एक दिन बाप कोल्हुआड़े से रात को लौट रहे थे, तो उन्हें जोर की सरदी लग गयी। दूसरे दिन बुखार लेकर पड़ गये। वह ऐसा बुखार था कि हफ्तों पड़े रहे। खाँसी का अलग ज़ोर था। जो दवा-दारू मुमकिन था, किया गया। घर की ऐसी तितर-बितर हालत थी कि उनकी सेवा भलीभाँति न हो सकती थी। छोटी बहू ने तो पहले से ही चारपाई पकड़ ली थी। बड़ी बहू को अपने दुख से ही फुरसत न थी। अकेली दुखियारी बूढ़ी क्या-क्या, कैसे-कैसे करती? फल यह हुआ कि बूढ़े कुछ सँभलें, तो उनके दोनों ठेहुओं को गँठिया ने पकड़ लिया। कुछ दिनों तक तो वह लाठी का सहारा लेकर हिलते-डुलते कुछ-कुछ चल-फिर लेते थे। फिर उससे भी मजबूर हो गये। अब ओसारे के एक कोने में चारपाई पर पड़े-पड़े एडियाँ रगड़ रहे हैं।

लोग उस घर की यह बिगड़ी हालत देखते हैं और आह भर कर कहते हैं, "ओह, क्या था और क्या हो गया!"

आख़िर बड़ी बहू को ख़याल आया कि घर की इस दिन-पर-दिन गिरती हालत की रोक-थाम न हुई, तो यह कहीं का नहीं रह जाएगा। उसे अपने लिए अब सोचने ही को क्या रह गया था? उसका जीवन तो नष्ट हो ही गया। उसके साथ ही अगर यह खानदान भी नष्ट हो गया, तो उसके जीवन के इस कठोर श्राप का कितना दर्दनाक परिणाम होगा! नहीं, नहीं, वह घर की बड़ी बहू है, उसे अपनी ज़िम्मेदारी समझनी

चाहिए। सब अपने-ही-अपने दुख में कातर होकर पड़े रहेंगे, तो काम कैसे चलेगा? और अब उसके जीवन का उद्देश्य सास, ससुर, देवर और बहन की सेवा के सिवा रह ही क्या गया है? उसके दुर्भाग्य के कारण ही तो इस घर की यह हालत हो गयी है। सास, ससुर, देवर, बहन सब-के-सब उसी के कारण तो इस हालत में पहुँचे हैं। फिर क्या अपने दुख में ही डूबकर उनके तईं जो जिम्मेदारी है, उसे वह भुला देगी? नहीं, अब उसका जीवन उन्हीं के लिए तो है। उनकी सेवा वह दिल पर पत्थर रखकर भी करेगी। दुख की चढ़ी नदी एक-न-एक दिन तो उतरेगी ही!

उस दिन से जैसे वह करुणा की देवी बन गयी और दुखी और जलती हुई आत्माओं पर वह सेवा-सुश्रूषा, स्नेह और भक्ति की शीतल छाया बनकर छा गयी। स्नान करके बहुत सबेरे ही वह पूजा करती। फिर सास, ससुर और बहन की सेवाओं में जुट जाती।

ससुर उसकी सूनी माँग, सूनी कलाई और सफेद वस्त्र में लिपटी हुई उसकी कुम्हलायी देह देखकर मन-ही-मन रो पड़ते। उनसे कुछ कहते न बनता। वह उन्हें सहारा देकर चारपाई से उठाती, उनका हाथ-मुँह धुलाती, सामने बैठ उन्हें भोजन कराती। ससुर काठ के पुतले की तरह सब करते और दिल में बस एक तड़प का तूफान लिये जब तक वह उनके सामने रहती मूक होकर उसके करुण मुखड़े की ओर टुकुर-टुकुर ताका करते।

सास को कुछ सन्तोष हुआ कि चलो, यह अच्छा हुआ था कि बड़ी बहू अपने को यों कामों में बझाये रखने लगी। ऐसा करने से वह दुख को भुलाये रहेगी और उसका मन भी बहला रहेगा।

छोटी बहन की तो वह माँ ही बन गयी। पहले वह उसे बहन की तरह प्यार करती थी, लेकिन अब उसे बहन के प्यार के साथ-साथ माँ के स्नेह, ममता, सेवा और त्याग की भी ज़रूरत थी। बड़ी बहू ने उसे वह सब कुछ देना शुरू कर दिया। वह उसे बच्चों की तरह गोद में बिठाकर दवा पिलाती, खिलाती, उसके कपड़े बदलती, उसके बाल सँवारती, चोटी गूँथती। फिर सिन्दूरदान उसके सामने रखकर कहती, 'ले, अब माँग तो टीक ले।'

यह सुनकर छोटी बहन की वीरान आँखें अपनी बहन की सूनी माँग की ओर उठ जातीं। उसके कलेजे में एक हूक उठती और डबडबाई आँखें एक ओर फेरकर कहती, "इसे रख दे, बहन।"

बड़ी बहन उसे गोद में लेकर, क्रन्दन करते मन को काबू में करके कहती, "ऐसा न कह, मेरी बहन! मेरी माँग लुट गयी, तो क्या हुआ? तेरी माँग का सिन्दूर भगवान् कायम रक्खें! उसे ही देख-देखकर मैं यह दुख का जीवन काट लूँगी! ले, भर तो ले माँग।"

छोटी बहन बड़ी बहन की गोद में मुँह डालकर फूट-फूटकर रो पड़ती। बड़ी बहन की आँखों से भी टप-टप आँसू की बूँदें चू पड़तीं। लेकिन अगले क्षण ही वह अपने को सँभालकर कहती, "ऐसा नहीं करते, मेरी लाडली!" कहकर वह उसकी आँखों को अपने आँचल से पोंछ देती। फिर कहती, "ले अब सिन्दूर लगा ले, मेरी अच्छी बहन!"

छोटी बहन आँखों में उमड़ते हुए आँसुओं का तूफान लिये काँपती उँगलियों से सलाका उठाकर सिन्दूर की डिबिया से सिन्दूर उठाती। बड़ी बहन उस वक़्त न जाने कैसा ऐंठता दर्द दिल में लिये अपनी भरी आँखें दूसरी ओर फेर लेती।

गोपी की भाभी को अपने पति की याद बहुत सताती। हर घड़ी उसकी भरी-भरी आँखों के सामने पति की तरह-तरह की तस्वीरें झलमलाया करतीं। पूजा करने बैठती, तो हमेशा यही विनती करती-"हे भगवान्, मुझे भी उनके चरणों में पहुँचा दो!"

कभी-कभी उसे अपने देवर की और अपनी हँसी, दिल्लगी और खुशी के ठहाकों की भी याद आती। उस समय उसे लगता कि वह-सब एक सपना था। आह, यह कौन जानता था कि वह हँसी-खुशी की बातें एक दिन इस तरह हमेशा के लिए ख़त्म हो जाएँगी और उनकी गूँज आत्मा के कण-कण में एक दर्द बनकर रह जाएगी? फिर उसे ख़याल आता कि किस तरह देवर ने भाई की हत्या के कारण शोक से पागल होकर अपने सुख की बलि चढ़ा दी। उस क्षण बरबस ही उसकी आँखें छोटी बहन की ओर उठ जातीं, जिसके दामन से देवर के जीवन का सुख-दुख बँधा हुआ था। वह देख रही थी कि उसकी हर तरह की सेवा-सुश्रुषा के बावजूद दिन-दिन वह फूल की तरह मुरझायी चली जा रही है। वह उसे हर तरह समझाने-बुझाने की कोशिश करती है, लेकिन जैसे वह कुछ समझती ही नहीं। देवर जब लौट के आएगा और उसे इस हालत में देखेगा, तो उसकी क्या दशा होगी?

धीरे-धीरे दुख झेलते-झेलते वह सख्त-जान बन गयी। बहन की सेवा वह और भी जी-जान से करने लगी। उसे लगता कि वह सिर्फ उसकी बहन ही नहीं है, बल्कि उसके प्यारे देवर की अमूल्य अमानत भी है। उस अमानत की रक्षा करना उसका सबसे बढ़कर कर्तव्यस है।

लेकिन उसकी इतनी सेवाओं का भी कोई असर उसकी बहन पर पड़ता दिखाई न देता। उसका हृदय कभी-कभी एक भयावनी आशंका से काँप उठता। वह ठाकुर की मूरत के सामने गिड़गिड़ाकर बिनती करती, "हे भगवान्! अब तो दया कर तू इस अभागे घर पर! और अगर तुझे इतने पर भी सन्तोष नहीं है, तो मुझ अभागिन को ही उठा ले और अपने कोप को शान्त कर ले!"

लेकिन भगवान् ने तो जैसे अपनी कृपा-दृष्टि उस खानदान से फेर ली थी। छोटी बहन की हालत न सुधरनी थी, न सुधरी। आख़िर उसकी हालत जब दिन-दिन बिगड़ती ही गयी, तो उसका भाई एक दिन उसे अपने घर लिवा ले गया। ख़याल था कि शायद हवा बदलने से, वहाँ माँ-भाभी और अपनी सखी सहेलियों के बीच रहकर मन आन होने से और तबीयत बहलने से वह स्वस्थ हो जाए। वह तो अपनी बड़ी बहन को भी कुछ दिनों के लिए लिवा ले जाना चाहता था, लेकिन इस घर का उसके बिना कैसे काम चलेगा, यही सोचकर उसे न लिवा जा सका। पालकी पर चढ़ने के पहले छोटी बहू खूब बिलखकर रोयी और सास और बहन से ऐसे लिपटकर मिली, जैसे उनसे आख़िरी विदाई ले रही हो। ससुर के पैरों को उसने आँसुओं से धो दिया। बूढ़े ससुर हाथों से आँखें ढँककर एक बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़े।

कौन जानता था कि सचमुच वह उसकी आख़िरी विदाई थी? माँ, बाप, भाई, भौजाई ने कुछ भी उठा न रखा। रुपये-पैसे पानी की तरह बहा दिये। लेकिन हुआ वही जो होना था। वह शूल जो एक दिन उस कोमल प्राण में चुभा था, उसने प्राण लेकर ही दम लिया।

यह ख़बर जब सास-ससुर और बहन को मिली, तो उनकी क्या हालत हुई, उसका वर्णन नहीं हो सकता। यह तो कुछ वही हुआ जैसे उनके दिल के नासूर में एक तीर और आ चुभा।

पाँच

जेल में शुरू-शुरू में गोपी के बाप उससे हर महीने एक बार मिलते रहे। फिर जब चलने-फिरने से मजबूर हो गये, तो उसके ससुर और साला बराबर उससे मिलने जाया करते। गोपी हर बार अपने माँ-बाप और भाभी के बारे में पूछता, घर-गिरस्ती के बारे में पूछता। वे कुछ गोल-मोल उसे बता देते। संकोचवश न गोपी अपनी औरत के बारे में कुछ पूछता, न वे बताते। कैद का दुख ही क्या कम होता है, जो वे उससे कोई दिल पर चोट पहुँचाने वाली बात कहकर उसके दुख को और बढ़ाते?

गोपी को जेल में सबकी याद सताती, लेकिन भाभी के दुख की उसे जितनी चिन्ता थी, उतनी और किसी बात की न थी। भाभी के विधवा रूप का चित्र हमेशा उसकी आँखों में घूमा करता। जिस प्यारी भाभी को पाकर, जिसके हृदय के स्नेह-दान से आकण्ठ तृप्त होकर, एक दिन वह निहाल हो उठा था, उसी भाभी को विधवा रूप में वह किन आँखों से देख सकेगा? वह सूनी माँग, वे सूनी कलाइयाँ, वह मुरझाया मुखड़ा...

कारागर के परिश्रम से उसने कभी जी न चुराया। मेहनती देह पर कठोर परिश्रम का भी क्या असर पडऩा था? घर की तरह खाने-पीने को मिलता, बेफिक्री की जिन्दगी होती, तो जेल में भी गोपी जैसा-का-तैसा बना रहता। किन्तु घी-दूध के पाले शरीर का अब सूखी रोटी और कंकड़ मिली दाल से पाला पड़ा था। ऊपर से भाभी की चिन्ता चौबीसों पहर की। गोपी सूखकर काँटा हो गया। फिर भी ढाँचा एक पहलवान का था। सड़ा हुआ तेली भी एक अधेली। किसकी मजाल थी कि आँख दिखा दे! फिर सीधे गोपी से किसी को उलझने का मौका भी कैसे मिलता? वह दिन-रात अपनी ही मुसीबत में उलझा रहता। इतना बड़ा जेल भी जैसे एकाकीपन के घेरे में ही उसके लिए सीमित बना रहा।

मुकद्दमे के दौरान वह जिला अस्पताल में पड़ा रहा था। पसली की चोट ख़तरनाक थी। दर्द जाता ही न था। छोटे अस्पताल में एक्स-रे वगैरा था नहीं। फिर किसी के लिए कोई क्यों जहमत उठाए? जैसे-तैसे दवा होती रही और मुकद्दमा चलता रहा। और फिर उसे हवालात में भेज दिया गया। सज़ा पाकर गोपी जब बनारस ज़िला जेल में भेज दिया गया, तो भी उसकी वही हालत थी। वह तो बल उसमें इतना था कि वह सब झेले जा रहा था।

बनारस जिला जेल के अस्पताल में उसके सौभाग्य से एक अच्छा कम्पाउण्डर मिल गया। वह भी उसी के जवार का था। जेल के अस्पतालों में कोई खास दवा नही रखी जाती। वह तो कम्पाउण्डर की तीमारदारी और गोपी के खून की ताकत थी कि दर्द कम होने लगा। वहीं उसकी भेंट मटरू सिंह से हुई। वह घाघरा के दीयर का नामी पहलवान था। एक ही बिरादरी के और हमपेशा होने के कारण दोनों एक-दूसरे से पहले ही से परिचित थे। गोपी का गाँव का दीयर से करीब पाँच मील ही पर था। मटरू एक झोंपड़ी बनाकर घाघरा के किनारे चटियल मैदानों के बीच अपने बाल-बच्चों के साथ रहता था। जवार में एक किम्वदन्ती मशहूर है कि मटरू की हाथी की तरह बढ़ती ताकत को देखकर ईर्ष्या वश किसी पहलवान ने न जाने पान में उसे क्या खिला दिया कि मटरू की साँस उखड़ गयी। उसे दमा हो गया। उसने बहुत इलाज कराया, लेकिन उसके साँस

की बीमारी न गयी। क्या करता, विवश होकर पहलवानी छोड़ दी और ब्याह करके एक साधारण किसान की तरह जीवन बिताने लगा। अब उसके तीन लडक़े भी थे।

एक तरह से वह दीयर का राजा ही माना जाता था। किनारे के मीलों खित्तों पर उसका एकछत्र राज था। घाघरा की धारा के साथ ही उसका भी 'महल' उठता और गिरता था। बरसात में ज्यों-ज्यों घाघरा ऊपर उठती जाती, त्यों-त्यों मटरू की झोंपड़ी भी। यहाँ तक कि भादों में जब घाघरा उफनकर समन्दर बन जाती, तो मटरू की झोंपड़ी किनारे के किसी गाँव में पहुँच जाती। और फिर ज्यों-ज्यों सैलाब उतरने लगता, मटरू की झोंपड़ी भी उतरने लगती और कातिक लगते-लगते फिर अपनी पुरानी जगह पर पहुँच जाती। मटरू उसी तरह 'गंगा मैया' का आँचल एक क्षण को भी नहीं छोड़ता, जैसे शिशु माँ का।

पहले नदी के हटने पर जो मीलों रेत पड़ती, उस पर झाऊँ और सरकण्डे के जंगल उग आते। बैसाख-जेठ में जब ये जंगल जवानी पर होते, तो ज़मींदार इन्हें कटवाकर बेच देते। लोग लावन और खपरैल छाने के लिए खरीद लेते। फिर बरसात शुरू हो जाती और सब ओर सैलाब उमडऩे लगता।

मटरू जब तक पहलवानी में मस्त रहा, उसे किसी बात की चिन्ता न थी। घाट से ही उसे इतनी आमदनी हो जाती, इतना दूध, दही और खाने-पीने का सामान मिल जाता कि खूब मज़े से दिन कट जाते। कोई ग्वाला उसे दूध दिये बिना नाव पर न चढ़ता। कोई बनिया मटरू का 'कर' चुकाये बिना उधर से न गुजरता। मटरू के लिए इतना बहुत था। खाने, दण्ड पेलने और घाट पर ऐंठ-ऐंठकर मँजी देह दिखाने के सिवा कोई काम न था।

लेकिन जब पहलवानी छूट गयी, गिरस्ती बस गयी, तो हराम की रोटी भी छूट गयी। उसने झोंपड़ी के आस-पास का जंगल साफ किया। ससुर से बैल और हल लेकर खेती शुरू कर दी। नदी की छोड़ी हुई कुँआरी धरती जैसे हल के फाल की ही प्रतीक्षा कर रही थी। उसने वह फसल उगली कि लोगों ने दाँतों-तले उँगली दबा ली।

दो-तीन साल के अन्दर ही मटरू की झोंपड़ी बड़ी हो गयी। दुधारू जमुना-पारी भैंस और एक जोड़ा बैल दरवाज़े पर झूमने लगे। मटरू का हौसला बढ़ा। उसने खेतों का विस्तार और भी बढ़ा दिया और अपने एक जवान साले को भी अपने पास ही बुला लिया। खूब डटकर मेहनत की और मेहनत का पसीना सोने का पानी बन फसलों पर लहरा उठा।

ज़मींदारों के कानों में यह ख़बर पहुँची, तो वे कुनमुनाये। उन्हें क्या ख़बर थी कि वह ज़मीन भी इस तरह सोना उगल सकती है। वे तो झाऊँ और सरकण्डों को ही बहुत समझते थे। तिरवाही के किसानों की जीभ से भी छाती-छाती-भर रब्बी की फसल देखकर लार टपकने लगी। लेकिन उनमें मटरू की तरह साहस तो था नहीं कि आगे बढ़ते, जंगल साफ करते और फसल उगाते। वे ज़मींदारों के यहाँ पहुँचे और लम्बी-चौड़ी लगान देकर उन्होंने खेती करने के लिए ज़मीन माँगी। ज़मींदारों को जैसे बेमाँगे ही वरदान मिले। उन्हें और क्या चाहिए था! उन्होंने दनादन दूनी-चौगुनी रकमें सलामी ले-लेकर किसानों के नाम ज़मीन बन्दोबस्त करनी शुरू कर दी।

मटरू को इसकी ख़बर लगी, तो उसका माथा ठनका। वह गाँवों में जा-जाकर किसानों को समझाने लगा कि वे यह कैसी बेवकूफी कर रहे हैं। गंगा मैया की छोड़ी ज़मीन पर ज़मींदारों का क्या हक पहुँचता है कि वे उस पर सलामी और लगान लें? जिसको जोतना-बोना हो, वह खुशी से आये और उसी तरह जंगल साफ करके जोते-बोये। ज़मींदारों से बन्दोबस्त कराने की क्या जरूरत? वे क्यों एक नयी रीति निकाल रहे हैं और ज़मींदारों का मन बिगाड़ रहे हैं...

किसानों को यह कहाँ मालूम था? वे तो मटरू से ही सबसे ज्यादा डरते थे। सोचते थे कि कहीं मटरू ने रोक दिया तो? उन्हें क्या मालूम था कि मटरू उनका स्वागत करने को तैयार है। जब उन्हें मालूम हुआ, तो उन्होंने पछताकर पूछा, "अब तो सलामी और लगान तीन-तीन साल की पेशगी दे चुके, मटरू भाई! पहले मालूम होता तो..."

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है," मटरू ने समझाया, "तुम लोग अपनी रकमें वापस माँग लो। साफ कह दो कि हमें ज़मीन नहीं लेनी, यही होगा न कि एक फसल न बो पाओगे। अगले साल तो तुम्हें कोई रोकने वाला न होगा। गंगा मैया की गोद सब किसानों के लिए खुली पड़ी है। वहाँ भला धरती की कोई कमी है कि खामखाह के लिए तुम लोगों ने ले-दे मचा दी? यह याद रखो कि एक बार अगर ज़मींदारों को तुमने चस्का दिया, तो तुम्हीं नहीं तुम्हारे बाल-बच्चे भी हमेशा के लिए उनके शिकंजे में फँस जाएँगे। उनकी लोभ की जीभ सुरसा की तरह बढ़ती जाएगी और एक दिन सबको निगल जाएगी। इसके उलटा अगर हम लोग सन्मत रहें और ज़मींदारों का मुँह न ताककर खुद ही उस धरती पर अपना अधिकार जमा लें, तो ये ज़मींदार हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। गंगा मैया पर कोई उनका आबाई हक नहीं है। उसके पानी की ही तरह उसकी धरती पर हम-सबका बराबर हक है। अपने इस स्वाभाविक हक को ज़मींदारों का समझना खुद अपने गले पर छूरी चलाना है। तुम लोग मेरा कहा मानो और मेरा पूरा-पूरा साथ दो। देखेंगे कि ज़मींदार हमारा क्या बिगाड़ लेते हैं।"

किसानों ने बहाने बनाकर ज़मींदारों से रुपये वापस माँगे, तो वे मुस्कुराये। ज़मींदार की तहबील में पड़े रुपये की वही हालत होती है, जो सर्प के मुँह में पड़े चूहे की। चूहा लाख चीं-चीं करे, छटपटाये, लेकिन एक बार मुँह में फँसकर निकलना असम्भव। बेचारे किसान चीं-चीं करने के सिवा कर ही क्या सकते थे? ज़मींदारों ने डाँटकर भगा दिया। कोई रसीद-वसीद तो थी नहीं, किसान करते भी तो क्या? हाँ, इसका परिणाम इतना अवश्य हुआ कि दूसरे किसानों ने ज़मीन बन्दोबस्त कराना बन्द कर दिया।

इस तरह आमदनी रुकते और किसानों को ज़मीन लेने से बिचकते देख ज़मींदारों के गुस्से का ठिकाना न रहा। पता लगाने पर जब उन्हें मालूम हुआ कि मटरू इसकी तह में है, तो एक दिन कई ज़मींदारों ने इकट्ठा हो मटरू को बुला भेजा।

मटरू दीयर में अभी तक जंगल के एक शेर की तरह रहा था। ज़मींदारों की यह हिम्मत न थी कि उसे सीधे तौर पर छेड़ें। जवार में यह धाक जमी थी कि मटरू पहलवान के पास सैकड़ों लठैत हैं। जब वह चाहे दिन-दहाड़े लुटवा सकता है। यही बात थी कि सारे जवार में उसका दबदबा था। उधर गुज़रने वाला कोई भी उसे बिना सलाम किये न जाता।

बुलावा सुनकर मटरू अकड़ गया। उसने साफ लफ्जों में कहलवा भेजा कि मटरू किसी ज़मींदार का कोई आसामी नहीं है। जिसे गरज हो, वही उससे आकर मिले।

ऐसे मौकों पर काम लेना ज़मींदारों को खूब आता है। उन्होंने पढ़ा-लिखाकर अपने एक चलते-पुर्जे कारिन्दे को मटरू के पास भेजा।

कारिन्दे ने खूब झुककर "जय गंगाजी" कहकर सलाम किया। फिर दोनों हाथ को उलझाता, बड़ी दयनीयता से मुँह बनाकर बोला, "पार जा रहा था। सोचा, पहलवानजी को जय गंगाजी कहता चलूँ।"

सुबह का वक़्त था। माघ का महीना। नदी पर गहरे भाप का धुँआ उठ रहा था। चारों ओर कोहरे की झीनी चादर फैली हुई थी। उसी में सूरज की कमजोर किरणें अटककर रह गयी थीं। सन-सन पछुआ बह रही थी। गेहूँ की छाती-भर उगी फसल निगाहों की सीमा तक चारों ओर फैली हुई थी। कोहरे से जमे मोती उनके पत्तों पर चमक रहे थे। बालों ने दूधा ले लिया था। अब ओस पी-पीकर तुष्ट हो रही थीं।

मटरू गाढ़े की लुंगी और कुरता पहने बैलों की नाँदों के पास खड़ा था। कुरते की बाँहें बाजू पर चढ़ी थीं। दाहिना हाथ कुहनी के ऊपर तक सानी से भींगा था। अभी-अभी

उसने नाँदों में खुद्दी मिलायी थी। आँखें तक मुँह डुबोकर बैल भडऱ-भडऱ की आवाज़ करते खा रहे थे। एक के पु_ पर बायाँ हाथ रखकर मटरू ने निगाह उठाकर कारिन्दे की ओर देखकर कहा, "घाट छूटने में अभी देर है, चिलम पिओगे?" कहकर वह कौड़े के पास आ बैठा।

कारिन्दा भी उसकी बगल में पत्तलों की चटाई पर बैठ गया। मटरू ने पास से खोदनी उठाकर आग उकसा दी। फिर दोनों हाथ-पाँव फैलाकर तापने लगे। मटरू ने आवाज दी, "लखना, जरा तमाकू-चिलम दे जाना।"

लखना मटरू का बड़ा लडक़ा था। उम्र चार साल, नंग-धड़ंग वह एक हाथ में चिलम और दूसरे में तमाकू लिये झोंपड़े से बाहर निकलकर दौड़ा-दौड़ा आकर काका के हाथ में चिलम-तमाकू थमाकर वहीं बैठ गया और उन्हीं की तरह हाथ-पाँव फैलाकर आग तापने लगा।

मूरत की तरह सुडौल, साँवले सुन्दर बालक की ओर देखकर कारिन्दा बोला, "क्यों रे, तुझे जाड़ा नहीं लगता?"

बालक ने एक बार आँखें झपकाकर उसकी ओर देखा, फिर मुस्कराकर सिर झुका लिया।

मटरू ही बोला, "कुछ पहनता-ओढ़ता नहीं। सोये में भी कुछ ओढ़ाओ, तो फेंक देता है।"

"तुम्हारा ही तो लडक़ा है, पहलवानजी!" कारिन्दे ने लासा लगाया।

"हाँ, पाच साल पहले तक मैंने भी न समझा कि कपड़ा क्या होता है। एक लँगोटा और लुंगी काफी होती थी। गंगा मैया की मिट्टी और पानी का असर ही कुछ ऐसा है कि सरदी-गरमी, रोग-सोग कोई पँजरा नहीं आता। क्या करूँ, साँस की बीमारी से देह उखड़ गयी।" कहकर चिलम पर मटरू अंगारे रखने लगा।

"बुरा हो उस दुश्मन का**! ...**"

बीच ही में बात रोककर मटरू बोला, "छोड़ो भाई, इस बात को, तमाकू पियो। भगवान् सबका भला करें!"

"हाँ भाई," चिलम को मुँह लगाते हुए कारिन्दा बोला, "आदमी हो तो तुम्हारी तरह, जो दुश्मन का भी भला मनाए।" कहकर कारिन्दा चिलम सुलगाने लगा।

"किस गाँव के रहने वाले हो? कायस्थ मालूम होते हो?" मटरू ने पूछा।

"हाँ, रहने वाला तो बालूपुर का हूँ, लेकिन काम जिन्दापुर के ज़मींदार के यहाँ करता हूँ।" धुएँ का सुरसुरा छोडक़र, मतलब पर आकर कारिन्दे ने साफ-साफ ही कहा, "सुना था ज़मींदारों ने तुम्हें बुलाया था, तुमने जाने से इनकार कर दिया।"

मटरू के माथे पर बल आ गये। उसने तीखी दृष्टि से कारिन्दे की ओर देखकर कहा, "हम किसी के ताबे हैं, जो..."

"नहीं, भाई, नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था," कारिन्दा बीच में ही बोल उठा, "कौन नहीं जानता कि तुम राजा आदमी हो। तुमने अपने लायक ही काम किया। लेकिन वहाँ सुनने में यह भी आया था कि सब ज़मींदार, जिनका दीयर में हिस्सा है, मिलकर तुम्हारे नाम एक बहुत बड़ा खित्ता लिख देने की सोच रहे हैं। तुम..."

"लिखनेवाले वे कौन होते हैं?" मटरू ताव में आकर बोला, "यहाँ तो सिर्फ गंगा मैया की अमलदारी है। उनके सिवा तो मैंने आज तक किसी को जाना नहीं। और सुन लो, तबीयत चाहे तो उनसे कह भी देना कि दीयर में कोई ज़मींदार का बच्चा दिखाई पड़ गया, तो बिना उसकी टाँग तोड़े न छोड़ूँगा!"

"अरे, भाई, तुम तो बेकार गुस्सा हो रहे हो। मुझे क्या पड़ी है यह सब किसी से कहने की? मुदा, बात चली तो मैंने कह दी। यह भी सुनने में आया था कि पहलवान चाहें तो सलामी और लगान की रकम में भी उनका हिस्सा तय कर दिया जाए..."

मटरू हँस पड़ा। फिर आँखें चढ़ाकर बोला, "मटरू पहलवान हराम का नहीं खाता। गंगा मैया के सिवा उसने किसी के सामने कभी हाथ नहीं फैलाया। देखेंगे कि अब किस तरह किसी किसान से सलामी और लगान लेते हैं और यहाँ की ज़मीन पर कब्जा दिलाते हैं! गंगा मैया की सौगन्ध लेकर कहता हूँ, लाला, कि..."

"भाई, मैं तो गुलाम आदमी ठहरा। भला तुम-जैसे राजा आदमी के सामने कुछ कहने की हिम्मत ही कैसे कर सकता हूँ? ज़मींदारों का जूता सीधा करते ही मेरी उमर बीत गयी। बुरा न मानना, ये ज़मींदार बड़े ज़ालिम शैतान होते हैं। तुम जैसे सीधे-सादे आदमी के लिए उनसे उलझना ठीक नहीं। वे ऊँच-नीच, झूठ-सच, मकर, फरेब कुछ नहीं देखते। अमलों के साथ रोज़ का उनका उठना-बैठना होता है। भला तुम उनसे कैसे पार पाओगे? फिर कागज़-पत्तर पर भी उनका नाम दर्ज है। कानून-कायदे के पैंतरे में ही वे तुम्हें नचा मारेंगे।"

"कानून-कायदे की बात वे घर बैठे बघारा करें। मुझे कोई परवाह नहीं। मैं तो यही जानता हूँ कि यह धरती गंगा मैया की है। जो चाहे आये, मेहनत करे, कमाए, खाये! ज़मींदारों ने अगर इधर आँखें उठाईं, तो मैं उनकी आँख फोड़ दूँगा! कहाँ रखा था कायदा-कानून उनका अब तक! मैंने मेहनत की, फसल उगायी, तो देखकर दाँत गड़ गये। चले हैं अब ज़मींदारी का हक जताने! आएँ न जरा हल कन्धे पर लेकर! दिल्लगी है यहाँ खेती करना! भोले किसानों को बेवकूफ बनाकर रुपये ऐंठ लिये। बेचारे वे मेहनत करेंगे और मसनद पर बैठे गुलछर्रे उड़ाएँगे तुम्हारे ज़मींदार। यहाँ मैं नहीं चलने दूँगा यह सब! उनसे कह देना कि यहाँ गंगा मैया की अमलदारी है। किसी ने पाँव बढ़ाए, तो देखते हो वह धारा! एक की भी जान न बचेगी। जाओ, अब घटहा खुलेगा। "

कारिन्दा अपना-सा मुँह लेकर उठ खड़ा हुआ। मटरू बड़बड़ाये जा रहा था, "हूँ! चले हैं गंगा मैया की छाती पर मूँग दलने! ..."

दीयर में मटरू और उसके लठैतों से पार पाना मुमकिन नहीं, यह ज़मींदार भी जानते थे और पुलिस भी। यह बिलकुल वैसा ही था, जैसे जान-बूझकर साँप के बिल में हाथ डालना।

मीलों लम्बे-चौड़े झाऊँ और सरकण्डे के घने जंगलों के बीच कोई सुतबस रास्ता न था। अजनबी कोई वहाँ कहीं पड़ जाए, तो फँसा रह जाए। जाने-बूझे लोग ही जंगल के बीच से होकर घाट तक जाने वाली टेढ़ी-मेढ़ी, बीहड़, दृश्य और अदृश्य पगडण्डी को जानते थे। फिर भी शाम होते ही किसी की हिम्मत उस पर चलने की न होती। लोगों का तो यह भी कहना था कि उन जंगलों में कितने ही डाकुओं के गिरोहों के अड्डे हैं। वहाँ मटरू से लोहा लेने का मतलब जान गँवाने के सिवा कुछ न था। सो, मौके की बात समझकर ज़मींदार कला काछ गये; पुलिस से साठ-गाँठ चलती रही और मौके की तैयारी होती रही।

हमेशा की तरह जेठ चढ़ते-चढ़ते फसल काट-कूट, दाँ-मिसकर मटरू ने अनाज और भूसा ससुराल पहुँचा दिया। बाल-बच्चों को भी भेज दिया। खानाबदोशी के दिन सिर पर आ गये थे। क्या ठिकाना कब गंगा मैया फूलने लगें! रात-भर में परोसों पानी बढ़ता है। हहराती हुई धारा से बचकर झोंपड़ी ऊपर हटाना जितनी जल्दी का काम था, उतना ही जोखिम का भी। वैसी हालत में बाल-बच्चों को साथ रखना ठीक न रहता। छुट्टी देह लेकर मटरू रहता था। ससुर तो उससे भी चले आने को कहते, लेकिन मटरू को जब तक नदी की हवा न छुए, नींद न आती थी। उसकी स्वच्छन्द आत्मा को गंगा मैया की लहर एक क्षण को भी छोडऩा सहृय न था। कुएँ का पानी उसे रुचता न था।

अबकी एक बात और मटरू ने कर डाली। उसने जवार में यह ख़बर भेज दी कि जो चाहे झाऊँ सरकण्डा काटकर ले जाए; ज़मींदारों से खरीदने की कोई जरूरत नहीं। गंगा मैया के धन पर सबका बराबर का अधिकार है।

चारों ओर से किसानों, मजदूरों और गरीबों ने जुटकर हल्ला बोल दिया। जिसे देखो, वही सिर पर झाऊँ या सरकण्डा लिये भागा जा रहा है।

ज़मींदारों ने यह सुना, तो जल-भुनकर रह गये। हज़ारों के घाटे का सवाल ही नहीं था, बल्कि हर साल की मुस्तिकल आमदनी की मद ख़तम होने जा रही थी। उन्होंने पुलिस से राय ली कि क्या करना चाहिए, लेकिन पुलिस ने उन्हें चुपचाप बैठे रहने की राय दी। इस वक़्त कुछ करने का मतलब सिर्फ मटरू से ही भिडऩा न था, बल्कि उन हज़ारों-लाखों किसानों, मजदूरों और गरीबों का मुकाबिला करना था, जिनको इस मामले में फायदा हो रहा था। थाने पर मुश्किल से लगभग एक दर्जन बन्दूकें होंगी। उनमें इतनी ताकत कहाँ कि हजारों-लाखों लाठियों के मुकाबिले उठ सकें। फिर जगह ठहरी बीहड़; एक बार फँसकर निकलना मुश्किल। उनका तो चप्पा-चप्पा छाना हुआ है। हाँ, जिले से गारद बुलायी जा सकती है। लेकिन ऐसा करने से ज़मींदारों को जो घाटा हुआ सो तो हुआ ही, ऊपर से गारद के खर्च भी सिर पर आ पड़ेंगे। उस पर भी क्या ठीक है कि अंजनबी गारद ही वहाँ आकर कुछ कर लेगी। जंगल में कहीं किसी का पता लगा लेना क्या खेल है? अभी मटरू को छेडऩा किसी भी हालत में ठीक नहीं। वक़्त आने दो, फिर देखना कि कैसे लाठी भी नहीं टूटती और साँप भी मर जाता है।

क्या करते ज़मींदार? कड़वा घूँट पीकर रह गये।

उधर मटरू घूम-घूमकर जंगल कटवा रहा था। आज किसानों को यह मालूम हो गया था कि मटरू जो कहता है, वही ठीक है। यहाँ किसी की ज़मींदारी-वमींदारी नहीं है। वरना क्या ज़मींदारों की चिरई का कोई पूत भी यहाँ दिखाई न देता? चारों ओर 'गंगा मैया की जय' गूँज रही थी। नदी की लहरें खिलखिलाकर हँसे जा रही थीं।

उस साल हजारों किसानों, मजदूरों और गरीबों की झोंपड़ी पर नयी छाजन हो गयी और साल-भर के लिए लावन घर में आ गया। मटरू को लोग दिल से दुआएँ दे रहे थे।

जेठ का दशहरा आते-आते नदी फूलने लगी। फिर अबकी कुछ पहले ही इतने जोर से बारिश शुरू हो गयी कि दिन में दो-दो, तीन-तीन बार मटरू को झोंपड़ी हटानी पडऩे लगी। जोरों से पानी बढ़ा आ रहा था। घण्टे में दस-दस, बीस-बीस हाथ डुबो देना मामूली बात थी।

दिन की तो कोई बात न थी, पर रात को मटरू सो न पाता। नदी का यह हाल, कौन जाने कब झोंपड़ी डूब जाए। मटरू बैठा-बैठा टक-टक चमकते पानी की ओर देखा करता। ऊपर बादल गरजते, बिजली कडक़ती। नीचे धारों की हहर-हहर भयंकर आवाज़ गूँजती। रह-रहकर अरारों के टूटकर गिरने का छपाक-छपाक होता रहता। झींगुरों की कर्णभेदी सीटियाँ और मेढकों की टर्र-टर्र चारों दिशाओं में लगातार ऐसे गूँजती रहती थी, जैसे उनमें प्रतियोगिता छिड़ी हो। चारों ओर छाये घने अन्धकार में कभी इधर, तो कभी उधर भक से कुछ जल उठता। और मटरू बैठा-बैठा गंगा मैया का यह विकराल रूप देखकर सोचता है कि जो माँ स्नेह से भरकर बेटे को छाती का दूध पिलाती है, वही कभी गुस्सा होकर किस तरह बेटे के गाल पर थप्पड़ भी मार देती है।

सावन चढ़ते-चढ़ते मटरू की झोंपड़ी किनारे एक गाँव के पास आ लगी। ये दिन मटरू को बेतरह खलते। उसे ऐसा लगता, जैसे गुस्से में आकर माँ खदेड़ती जा रही हो और धमकी दे रही हो कि 'अगर पकड़े गये तो छट्ठी का दूध याद करा दूँगी।' उसे तो क्वार से शुरू होने वाले दिन अच्छे लगते, जब आगे-आगे माँ भागती होती और पीछे-पीछे वह स्नेह और श्रद्धा से हाथ फैलाये उसे पकडऩे को दौड़ता होता कि कब पकड़ लें और उसके आँचल में मुँह छिपाकर, विह्वलता में रोकर उससे पूछे, "माँ, इतने दिन तुम नाराज क्यों रही?" माँ-बेटे का यह भाग-दौड़ का खेल हर साल होता है। कभी माँ दौड़ाती, तो बेटा भागता; कभी माँ भागती तो बेटा दौड़ाता। इस खेल में कितना मजा आता था!

आख़िर नदी जब समुन्दर बन गयी और कहीं भी किनारे मटरू के लिए जगह न बच गयी, तो लाचार हो, माँ का दामन छोडक़र, उसे कगार के लिए गाँव में झोंपड़ी खड़ी करनी पड़ी। वियोग के इन दिनों मटरू आँखों में आँसू भरे कगार पर बैठा घण्टों धारा के रूप में फहराते माँ के आँचल को निहारा करता। तूफानी वेग से धारा बाँसों उछलती-कूदती, प्रलय का शोर करती भागती जाती। बीच-बीच में कहीं-कहीं काले बुँदकों की तरह उभरकर सूँस अदृश्य हो जाते। कहीं भँवर में पडक़र कोई पेड़ का तना इस तरह नाचने लगता, जैसे कोई उँगलियों पर चक्र नचा रहा हो। मटरू के मन में एक बालक की तरह उठता कि वह धारा में कूदकर उसे छीन ले और अपनी उँगलियों पर उसे नचाता धारा में किलोल करे। माँ की शक्ति से बेटे की शक्ति क्या कम है? कभी किसी झोंपड़ी को बहते जाते देखता, तो तड़पकर कहता, "माँ, यह तूने क्या किया? किसी बेटे का बसेरा उजाड़ते तुझे दर्द न लगा? ऐसा गुस्सा भी क्या, माँ?"

बस्ती की हवा उसे अच्छी न लगती, जैसे हरदम उसका दम घुटता रहता। जंगली फूल की तरह बस्ती में मुरझाया-मुरझाया सा रहता। सीमाहीन उस मैदान, उस साफ हवा,

उस नरम मिट्टी, उस मुक्त धूप और उस स्वच्छन्दता के लिए उसके प्राण तड़पते रहते। कभी तो वह इतना घबराता कि उसके जी में आता कि धारा में कूद पड़े और इतना तैरे कि तन-मन ठण्डा हो जाए और फिर धाराओं की सेज पर ही सो जाए। लेकिन तभी उसे अपनी प्यारी बीवी और नन्हें-मुन्ने बच्चों की याद आ जाती और वह जाने कैसा मन लिये कगार पर से उठ जाता। उस समय उसे ऐसा लगता कि कहीं वहाँ बैठे रहकर सचमुच वह कूद न पड़े।

इन दिनों कभी-कभी बहुत आग्रह पर वह ससुराल जाता, तो एकाध रात से ज्यादा न रह पाता। उसे लगता, जैसे माँ उसे पुकार रही हो। वह लौटकर जब तक घण्टों धारा में न लोट लेता, उसे चैन न मिलता।

उस रात कगार पर बैठे-बैठे उसकी पलकें जब झपकने लगीं, तो उठकर वह झोंपड़ी के दरवाज़े पर पड़ी पत्तलों की चटाई पर लेट गया। बड़ी सुहानी, ठण्डी हवा चल रही थी। धाराएँ जैसे लोरी गा रही थीं और अरार रह-रहकर ताल दे रहे थे। मटरू को बड़ी मीठी नींद आ गयी।

नींद में ही अचानक उसे ऐसा लगा, मानो छाती पर कई मन का बोझ सहसा आ पड़ा हो। उसने कसमसाकर आँखें खोलीं तो छाती पर टार्च की रोशनियों में दो नौजवानों को चढ़ा पाया। हाथों का सहारा ले वह जोर लगाकर उठने को हुआ, तो जंजीरें झनझना उठीं। मालूम हुआ कि हाथ बँधे हुए हैं। घबराकर उसने इधर-उधर देखा, तो चारों ओर भाले से लैस कान्सटेबल दिखाई पड़े। उसकी समझ में सब आ गया। गुस्से और नफरत से काँपता वह दाँत पीसकर रह गया।

जब से वह कगार की बस्ती में आया था, पुलिस उसके पीछे खड़ी थी। आज मौका पाकर उसने उसे दबोच लिया था। रात-ही-रात मटरू को हथकड़ी-बेड़ी चढ़ाकर जिले की हवालात में पहुँचा दिया गया और गाँव वालों पर इतनी सख्ती की गयी कि कोई चूँ तक न कर सका।

रपट-मुकद्दमा, गर-गवाही सब-कुछ पहले ही से तैयार था। मटरू के ससुर ख़बर लेने थाने पर पहुँचे, तो उन्हें मालूम हुआ कि मटरू डाके के अपराध में गिरफ्तार हुआ है। पुलिस ने मटरू की झोंपड़ी में छापा मारकर जो जेवर माल बरामद किये हैं, वह जिन्दापुर के ज़मीदार नथुनी सिंह के हैं, एक-एककर पहचान लिये गये हैं। जल्दी ही कचहरी में मुकद्दमा खड़ा होगा। इस्तग़ासा तैयार हो रहा है।

जिसने यह सुना, आँख फाडक़र रह गया-कोई दुख से, तो कोई आश्चर्य से। लेकिन उस दौरान जवार में पुलिस की सख्ती इतनी बढ़ा दी गयी थी कि किसी की हिम्मत पुलिस या जमींदार के ख़िलाफ एक बात भी ज़बान पर लाने की न थी। शोर यह मचाया गया कि मटरू सरदार के गिरोह के करीब पचास डाकू फरार हैं। पुलिस उनकी गिरफ्तारी के लिए सरगर्मी से दौड़ लगा रही है। दूसरे-तीसरे दिन यह भी अफवाह गाँवों में फैल जाती कि आज दो डाकू गिरफ्तार हुए, तो आज तीन। एक अजब हडक़म्प मचा दिया पुलिस ने चारों ओर।

महीनों रच-रचकर सब हरबे-हथियार के साथ जो मुकद्दमा तैयार किया गया था, उसमें बाल की खाल निकालने पर भी कोई नुख्स निकाल लेना मुश्किल था। फिर छोटे से लेकर जिले के बड़े-बड़े अधिकारियों तक की मुट्ठियाँ इतनी गरमा दी गयी थीं कि सब-के-सब कुछ भी खड़ा-का-खड़ा निगल जाने को तैयार थे।

डिप्टी साहब की कचहरी से होकर मुकद्दमा सेशन सुपुर्द हुआ। साले और ससुर से जो भी करते बना, उन्होंने किया। लेकिन नतीजा वही निकला जो पहले ही सील-मुहर में बन्द करके रख दिया गया था।

मटरू को तीन साल की सख़्त सजा हो गयी और तीन दिन के अन्दर ही रात की गाड़ी से बनारस जिला जेल को उसका चालान भेज दिया गया।

छः

भाभी का जीवन एक साधना का जीवन बन गया।

कलेजे में पति की चुभती हुई यादें दबाये वह रात-दिन अपने को किसी-न-किसी काम में बझाये रखती। आँखों से टप-टप खून के आँसू चुआ करते और हाथ काम करते रहते। सास-ससुर चुपचाप सब देखते! एक बात भी उनके मुँह से न निकलती। ऐसी विधवा के लिए कोई कौन-सी सान्त्वना की बात कहे? कोई बच्चा रहता, तो उसका मुँह ही देखकर उसे जीने की, सब्र करने की, बात कही जाती। यहाँ तो वह भी हीला न था, कोई क्या कहता? ऐसी विधवा का जीवन एक ठूँठ की ही तरह होता है, जिस पर कभी हरियाली नहीं आने की, कभी फल-फूल नहीं लगने के, व्यर्थ, बिलकुल व्यर्थ, धरती का व्यर्थ भार! हाँ, ठूँठ का बस एक उपयोग होता है। उसे काटकर लावन में जला दिया जाता है गृहस्थ-जीवन में शायद ऐसी विधवा का उपयोग लावन की ही तरह है, ज़िन्दगी-भर जलते रहना, जलकर गृहस्थी की सेवा करना, जिस सेवा के फल का भोग दूसरे भोगें और खुद वह राख होकर रह जाए।

यही हाल भाभी का था। वह सब काम करती। बूढ़ी सास कोने में बैठी अपने बेटों को बिसूर-बिसूर कर रात दिन रोया करती। अपाहिज ससुर के दिल-दिमाग को अचानक एक-पर-दूसरी पड़ी विपत्तियों के कारण लकवा मार गया था। वह गहरी मानसिक पीड़ा में डूबे रहते-यह क्या हो गया? क्या था और क्या हो गया? उन्हें जब अपना हरा-भरा चमन याद आता, तो चुप-चुप ही कूल्हने लगते वे...आह, आह राम! तूने यह क्या कर दिया! ऐसा कौन-सा पाप मैंने किया था, जो यह दिन दिखाया?

कभी-कभी ऐसा होता कि तीनों प्राणी एक-दूसरे को सान्त्वना देने इकट्ठे हो जाते। और फिर बातों-ही-बातों में जाने क्या हो जाता कि तीनों एक साथ ही संकोच और लेहाज छोडक़र रोने लगते, एक-दूसरे से लिपट जाते। समान व्यथा की तड़प जैसे उन्हें एक कर देती। उस वक़्त पास-पड़ोस के औरत-मर्द इकट्ठे होकर उन्हें समझा-बुझाकर जबर्दसती अलग करते और आँसू पोंछकर चुप कराते। फिर सब-कुछ मसान की तरह शान्त हो जाता। जैसे वहाँ कोई जीवित आदमी ही न रहता हो। व्यथा का वेग अन्दर-अन्दर ही खून सुखाता रहता। लेकिन होंठ न हिलते। लोग वहाँ से जाने लगते, तो उनकी साँसें भी आह बन जातीं। ओह, क्या था और क्या हो गया? बेचारा गोपी छूटकर आ जाता, तो इन्हें कुछ ढाढ़स बँधता।

भाभी को कभी ठीक तरह से नींद न आती। कभी झपकी आ जाती, तो जैसे कोई भयानक सपना देखकर चिहुँक उठती और चुप-चुप रोने लगती। एक-एक याद उभरती और एक-एक हूक उठती। रात का सन्नाटा और अन्धकार जैसे पूरा इतिहास खोल देता। भाभी बेचैन हो-हो करवटें बदलती और एक-एक पन्ना उलटता जाता। आख़िर जब सहा न जाता, तो उठकर रसोई के बरतन-बासन उठा, आँगन में लाकर माँजने-धोने लगती। सास बरतनों का बजना सुनती, तो सोये-सोये ही बोलती, "अरे बहू, अभी उठ गयी? अभी तो बड़ी रात मालूम देती है। सो रह, अभी सो रह।"

भाभी गला साफ करके कहती, "कहाँ रात है अब? सुकवा उग आया है अम्माजी!"

"अभी मेरी एक भी नींद पूरी नहीं हुई है और तू कहती है कि सुकवा उग गया है? सो रह, बहू, सो रह? कौन खाने पीने वाला है, जो इसी वक़्त बरतन भाँड़ा लेकर बैठ गयी? सो रह, बहू, सो रह।"

भाभी कोई जवाब न देती। सास कहर-कहरकर करवट बदलती बुदबुदाती, "हे राम, हे राम!" और नींद में गोता लगा जाती।

धीमे-धीमे बिना कोई आवाज़ किये भाभी बरतन माँज-धोकर उठती; धीरे-धीरे चौका लगाती। फिर स्नान करके कपड़े बदलती और ठाकुर घर साफ कर, दीप जला, मूरत के सामने बैठकर, रामायण खोलकर होंठों ही में मिला-मिलाकर पढने लगती। उसकी समझ में कुछ न आता। वह पढ़ी-लिखी बिलकुल नहीं थी। बचपन में एक-दो महीने भाई के साथ खेल-खेल में स्कूल गयी थी। उसी दौरान खेल-खेल में उसने अक्षर और मात्राएँ सीख ली थी। फिर माँ ने उसे स्कूल जाने से रोक दिया था। लडक़ी को पढने-लिखने की भला क्या जरूरत? फिर सब-कुछ भूल गयी। अब, जब वक़्त काटे न कटता, तो उसने फिर सालों बाद उस अक्षर-ज्ञान को धीरे-धीरे ताजा किया। घर में रामायण के सिवा और कोई किताब न थी। वह उसी पर अभ्यास करने लगी। एक-एक चौपाई में उसके मिनटों बीत जाते। अक्षर-अक्षर मिला कर वह शब्द बनाती। फिर कई बार दुहराकर आगे बढ़ती। फिर दो शब्दों को कई बार दुहराकर आगे बढ़ती। इस तरह एक चरण ख़तम करके वह उसे बीसों बार दुहराती।

इसमें वक़्त काटने के साथ ही, कुछ भी न समझते हुए भी, उसे एक आध्यात्मिक सुख और सान्त्वना मिलती। उसका ख़याल था कि धीरे-धीरे अभ्यास हो जाने पर वक़्त काटने का एक अच्छा साधन लग जाएगा। दुखी प्राणी के लिए वक़्त काटने की समस्या से बढक़र कोई समस्या नहीं होती। और वह तो ऐसी दुखी प्राणी थी, जिसे सारा जीवन ही इसी तरह काटना था। विधवा के जीवन में सुख के एक क्षण की भी कल्पना कैसे की जा सकती है?

सुबह सास-ससुर के उठने के पहले ही वह सारा घर बुहारकर साफ कर लेती? हलवाहा आता, तो उससे भैंस दुहवाती, उसे नाँदों में चलाने के लिए भूसा-घर से भूसा निकालकर देती। फिर ज़रूरी सामान देकर उसे खेत पर भेज देती। पुराना हलवाहा बड़ा ही नमकहलाल था। उसी पर आजकल पूरी खेती का भार छोड़ दिया गया था। घर के आदमी की तरह वही सब-कुछ करता और भाभी को पूरा-पूरा हिसाब देता।

ससुर की नींद खुलती, तो वे बहू को पुकारते। भाभी जल्दी-जल्दी आग तैयार करके हुक्का भरकर उनके हाथ में थमा आती। सास ने कुछ इस तरह देह छोड़ दी थी कि भाभी को ससुर के सभी काम सब लोक-लाज छोडक़र करने पड़ते थे।

चारपाई पर ही वह उनके हाथ-मुँह धुलाती, दूध गरम करके पिलाती। फिर हुक्का ताजा कर, उनके हाथ में दे, दवा की मालिश करने लगती। ससुर कहर-कहर कर हुक्का गुडग़ुड़ाते रहते। कहीं किसी जोड़ पर बहू का हाथ ज़रा जोर से लग जाता, तो चीख़कर कहते, "अरे बहू, सँभालकर मल! ओह, आह!"

फिर वह घर के काम में लग जाती। फटकने-पछोड़ने, कूटने-पीसने से लेकर खिलाने-पिलाने तक के सभी काम वह करती। सास बिसूर-बिसूरकर किसी कोने में बैठी रोती रहती या टुकुर-टुकुर बहू को काम करते निहारा करती।

भाभी अब पहले की भाभी नहीं रह गयी-न वह रूप, न रंग, न वह जवानी न वह देह। अब तो वह जैसे पहले की भाभी की एक चलती-फिरती छाया रह गयी थी। दुबली-पतली, सूखी देह, बेआब-पीला चेहरा, उदास, आँसुओं में सदा तैरती-सी आँखें, मुरझाये-सिले-से होंठ, रोएँ-रोएँ से जैसे करुणा टपक रही हो एक ज़िन्दगी की जैसा मुर्दा तस्वीर हो, या जैसे एक मुर्दा ज़िन्दा होकर चल-फिर रहा हो।

हाय, वह क्यों ज़िन्दा है? आह, उसके भी प्राण उन्हीं के साथ क्यों न निकल गये! बहन ने कैसा पुण्य किया था कि उसे भगवान् ने बुला लिया! हाय, वह कैसी महापापिन है कि नरक भोगने को रह गयी? इस नरक से वह कब उबरेगी, इस यातना से आखिर कब छुटकारा मिलेगा?

महीनों बाद व्यथा की बरसाती धारा जब धीरे-धीरे धीमी होकर शान्त हुई और जब भाभी धीरे-धीरे कर सब-कुछ करने-सहने की अभ्यस्त हो गयी, तो उसके जीवन की व्यर्थता और असीम निराशा के, जो प्राणों के चूर-चूर हो जाने से आयी थी, डंक भी कुन्द होने लगे। अब भाभी कभी-कभी कुछ सोचती थी, अब कभी-कभी उसके हृदय में जीवन के उन सुखों के अंकुर फिर उभरते-से अनुभव होते, जिन्हें एक बार वह अपने जीवन के फल-फूल से लदे देख चुकी थी। पति की याद से भी अब कभी-कभी उसके मानस से उन्हीं कोमल भावनाओं का स्फुरण होता, जो उसके सहवास में उसे मिली थीं। अब बार-बार उसके मन के सात पर्दों" में दबे स्थान से सवाल उठता, "क्या जीवन में वे दिन फिर कभी न आएँगे? क्या वह सुख फिर कभी न मिलेगा? वह, वह..." और उसके मुँह से एक दबी हुई ठण्डी साँस निकल जाती। प्राणों में जाने कैसी एक ऐंठ और दर्द महसूस होता। वह कुछ व्याकुल-सी हो उठती काश...

ऐसे अवसर पर जाने कैसे उसका ध्यान अपने देवर की ओर चला जाता। वह सोचती कि उसकी हालत भी तो ठीक उसी की जैसी होगी। उसका भी तो सुख का संसार उसी की तरह उजड़ गया। उसके मन में भी तो आज ठीक उसी की तरह के भाव उठते होंगे। वह भी तो उसी की तरह तड़पता होगा कि काश...

और तभी जैसे कोई उससे कह जाता, 'वह तो मर्द है। जैसे ही वह जेल से लौटेगा, उसका दूसरा ब्याह हो जाएगा और फिर उसकी एक नयी ज़िन्दगी शुरू होगी, जिसमें पहले ही-सा सुख...'

और वह मर्माहत हो उठती। उसके होंठ बिचक-से जाते, जैसे उसमें एक नफरत, एक गुस्से का भाव भर उठता हो और यह प्रश्न उसकी आत्मा की तड़प में लिपटकर उठ पड़ता हो, "ऐसा क्यों, ऐसा क्यों होता है? यह अन्तर क्यों? क्यों एक को अपनी उजड़ी दुनिया को गले से लिपटाये तिल-तिल जलकर राख हो जाने को विवश होना पड़ता है और दूसरे को अपनी उजड़ी हुई दुनिया फिर से बसाकर सुख-चैन से ज़िन्दगी बिताने का अधिकार मिलता है?"

और वह तिलमिला उठती? नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए, हरगिज नहीं! उसे भी अधिकार होना चाहिए कि...

यह कैसी बातें उठने लगी हैं मन में? भाभी को जब होश आता, तो उसे स्वयं पर आश्चर्य होता। अभी कल की ही तो बात है कि पति के वियोग में तड़पकर वह मर जाना चाहती थी। लेकिन आज, आज यह क्या हो रहा है कि वह एकदम बदल गयी है, ऐसी-ऐसी बातें सोच रही है, ऐसे-ऐसे विचार मन में उठते हैं, ऐसी-ऐसी इच्छाएँ अन्तर में सिर उठा रही है! और वह अभी कल की ही अपनी मन:स्थिति की बात सोचकर अपने ही सामने आज शर्मिन्दा हो उठती है। कहीं किसी को आज उसके मन में उठने वाले भाव मालूम हो जाएँ, तो? नहीं, नहीं, नहीं! लोग क्या कहेंगे? लोग उसे कितनी पापिनी समझेंगे? लोग उसे क्या-क्या ताने देंगे कि पति को मरे अभी दो-तीन साल भी न हुए और यह कलमुँही ऐसी-ऐसी बातें सोचने लगी! यह विधवा-जीवन की पवित्रता आगे क्या कायम रख सकती है? ओह, ज़माना कितना बिगड़ गया है। देखो न, कल की विधवा आज...

और वह एक विवशता और व्याकुलता से तड़प उठती। वह इस अपने मन को क्या करे? वह कैसे इन अपवित्र भावों को दबा दे। वह ठाकुर-घर में आजकल प्रार्थना करती है, "भगवान्, मुझे शक्ति दे कि मैं कुल-रीति पर कायम रहूँ! मन में उठती अपवित्र भावनाओं पर काबू पा सकूँ! विधवा-जीवन पर कलंक न लगने दूँ!" लेकिन भगवान् से उसे वह शक्ति नहीं मिल रही थी। मन हरिण की तरह जब-तब छलाँगें मारने लगता। वह बरबस पति को याद करती। सोचती कि जब तक उनकी याद बाकी रहेगी, वह न डिगेगी। लेकिन अब उनकी याद भी धुँधली पड़ती जा रही थी। बहुत कोशिश करके भी वह बहुत देर तक उन यादों में न बिता पाती। न जाने कब यादें अपना रूप बदल देतीं! व्यथा उत्पन्न करने वाली यादें उन सुखों की याद दिलाने वाली बन जातीं जो उसे अपने पति से मिले थे। और फिर उन सुखों की याद करके उन्हें फिर से प्राप्त करने की चाह मन में उठ पड़ती। अन्तर एक मीठी सिहरन से भर जाता। और जब उसे इसका ख़याल आता, तो वह अपने को धिक्कारने लगती। इस तरह एक अजीब रहस्यमय

द्वन्द्व उसके मन में बस गया। और वह जान-बूझकर यह भी अनुभव करती रही कि कौन पक्ष जीत रहा है, कौन हार रहा है।

अब पहली-सी हालत उसकी न रही। अब घर में काम-काज, सास-ससुर की सेवा में उसकी वह तन्मयता न रही। अब जैसे वह-सब आधे मन से करती, अब कभी-कभी सास किसी काम में देर होने पर उसे डाँटती, तो वह जवाब भी दे देती, "दो ही हाथ हैं मेरे! क्यों नहीं तुम्हीं कर लेतीं? लौंडी की तरह रात-दिन तो खट रही हूँ! फिर भी यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ! सुनते-सुनते मेरे कान पक गये! ..."

सास सुनती, तो बड़बड़ाने लगती। अनाप-शनाप जो भी मुँह में आता, कह जाती। भाभी में अभी उससे ज़बान लड़ाने की हिम्मत न थी। फिर भी होंठों में बुदबुदाने से अब वह भी बाज न आती।

धीरे-धीरे दोनों चिड़चिड़ी हो गयीं और झल्ला-झल्लाकर बातें करने लगीं। एक दुखमय शान्ति, जो इतने दिनों घर में छायी रही थी, वह अब ख़तम हो गयी। अब तो टोले-मोहल्लेवालों के कानों तक भी इस घर की बातें पहुँचने लगीं। ये बातें दो कुण्ठित, बीमार जिन्दगियों की थी-चिढ़, गुस्से, विवशता और व्यर्थता से भरी।

एक दिन सुबह भूसा-घर से खाँची में भूसा निकालकर दालान में खड़े हलवाहे को देने भाभी आयी तो खाँची हाथ में लेते हुए हलवाहे ने कहा, "छोटी मालकिन, कई दिनों से एक बात कहने को जी होता है, बुरा तो न मानेंगी?"

कपड़े पर पड़े भूसे के तिनकों को साफ करती हुई भाभी बोली, "क्या बात है? तुझे कुछ चाहिए क्या?"

"नहीं, मालकिन," हलवाहे ने आँखों में नंगी करुणा और होंठों पर सच्चा मोह लाकर, बड़ी ही सहानुभूति के स्वर में कहा, "मालकिन, आपकी देह देखकर मुझे बड़ा दु:ख होता है! अभी आपकी उम्र ही क्या है? इसी उम्र से इस तरह आपकी ज़िन्दगी कैसे कटेगी? इतने ही दिनों में आपकी सोने की देह कैसे माटी हो गयी? मालकिन, आपको इस रूप में देखकर मुझे बड़ा दुख होता है!" कहते-कहते ऐसा लगा कि वह रो देगा।

भाभी के चेहरे की उदास छाया और भी काली हो गयी। वह बोली, "क्या करें, बिलरा, भाग्य के आगे किसका बस चलता है? विधाता ने सेनुर मिटा दिया, करम फोड़ दिया, तो अब इस तरह रो-धोकर ही तो ज़िन्दगी काटनी है। तू दुख काहे को करता है? करम

का साथी कौन होता है? विधाता से ही जब मेरा सुख न देखा गया, तो..." वह आँखों पर आँचल रखती सिसक पड़ी।

एक ठण्डी साँस लेकर बिलरा बोला, "यह कैसा रिवाज है मालकिन, आपकी बिरादरी का? इस मामले में तो हमारी ही बिरादरी अच्छी है, जो कोई बेवा इस तरह अपनी ज़िन्दगी ख़राब करने को मजबूर नहीं। मेरी ही देखिये न। भैया भाभी को छोडक़र गुजर गये, तो भौजी का ब्याह मुझसे हो गया। मजे से ज़िन्दगी कट रही है। और आप ऊँची बिरादी में क्या पैदा हुईं कि आपकी ज़िन्दगी ही ख़राब हो गयी...क्या कहूँ मालकिन, मन में उठता तो है कि छोटे मालिक से अगर आपका ब्याह हो जाता..."

"बिलरा!" ऊँची बिरादरी का अहंकार भभक उठा, "फिर कभी यह बात जबान पर मत लाना! जिस कुल का तू नमक खाता है, उसकी मर्यादा का तू ख़याल न कर, ऐसी बात फिर मुँह से निकाली, तो मैं तेरी ज़बान खींच लूँगी! तुझे क्या मालूम नहीं कि इस कुल की विधवा ज़िन्दा जलकर चिता में भस्म हो जाती है, लेकिन...जा, हट जा तू!" कहकर भाभी अपनी चारपाई पर जा गिरी और फफक-फफककर रोने लगी।

सास-ससुर अभी सो रहे थे। काफी देर तक भाभी रोती रही। यह रोना एक अपमानित आत्मा के अहंकार का था। नीच, कमीने आदमी ने जिस तार को छेड़ा था, वह कितनी ही बार आप-ही-आप भी झंकृत हुआ था, भाभी ने उसका स्वाद मन-ही-मन लिया था। लेकिन यह तार इतना गोपनीय, इतना अहंकारों और संस्कारों के बीच छिपाकर सावधानी से रखा गया था कि उसे कभी कोई छू पाएगा, इसकी कल्पना भाभी को न थी। उसी तार पर उस नीच कमीने आदमी ने सीधे उँगली रख दी थी। यह क्या कोई साधारण अपमान की बात थी! भाभी की क्षुब्धता ही रुदन में फूटी थी। इस क्षुब्धता की एक धार जहाँ उस कमीने की गरदन पर थी, वहीं उसकी दूसरी धार स्वयं भाभी की गरदन पर, इसका ज्ञान भाभी को था। वरना वह कमीना क्या थप्पड़ खाये बिना जा पाता? राजपूतनी के खून की बात थी कि कोई ठट्ठा?

भाभी उस दिन से और सावधान हो गयी, ठीक उसी तरह जैसे एक बार चोरी पकड़े जाने पर चोर। अब वह बिलरा के सामने भी न जाती। सास को सुबह ही जगा देती। उसी के हाथ दूध निकालने के लिए घूँचा और नाँद में चलाने के लिए भूसा भी भिजवाती। कोई भी हो, आख़िर मरद ही तो है। किसी मरद के सामने विधवा न जाना चाहे, तो इसकी प्रशंसा कौन न करे?

जो भी हो, उस कमीने आदमी की उस बात ने भाभी की गोपनीय, पाप-मय कल्पनाओं को परवान चढऩे के लिए एक मजबूत आधार दे दिया। जाने-अनजाने भाभी के ख़याल

में देवर अब उभर-उभर आता। उनकी सैकड़ों बातों की यादें ऐसा-ऐसा रूप लेकर आतीं कि भाभी को शंका होने लगी कि देवर कहीं सचमुच तो उसे नहीं चाहता था। मासूम, निष्कलंक, निश्छल, पवित्र स्नेह पर वासना की झीनी चादर ओढ़ाते किसको कितनी देर लगती है? फिर भाभी का भूखा मन आजकल तो ऐसी कल्पनाओं में ही मँडराया करता, कभी-कभी तो उस कमीने की बिरादरी से भी ईर्ष्या हो जाती कि काश...तभी फिर न जाने कहाँ से एक कठोर पुरुष आ भाभी पर इतने कोड़े लगा देता कि भाभी खून-खून हो छटपटा उठती।

भाभी की कल्पनाओं की सेज भी काँटों की थी, जिस पर उसकी देह पल-पल छिदती रहती।

'

गंगा मैया भाग 2 - ganga Maiya Part 2

1. गंगा मैया भाग 1
2. गंगा मैया भाग 2
3. गंगा मैया भाग 3
4. गंगा मैया भाग 4
5. गंगा मैया भाग 5
6. गंगा मैया भाग 6